कुछ खोने से कुछ पाने तक

सुनीता ठाकुर

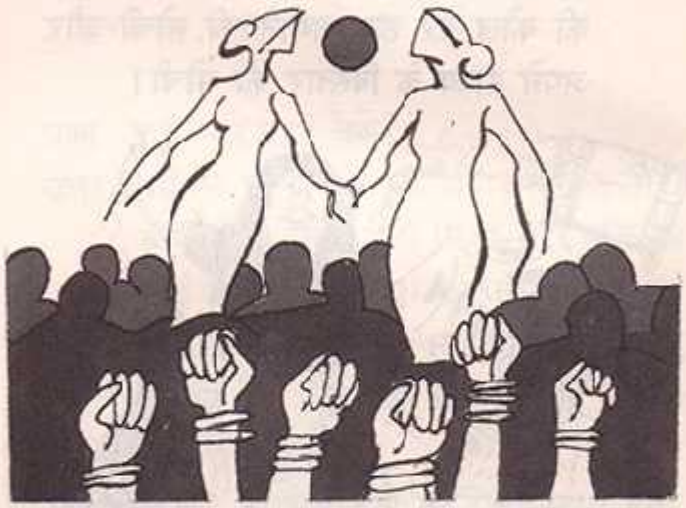

दहलीज़ के बाहर
रखा है कदम
पहुंचे चूल्हे से
चौखट तक हम
रोके रुकेंगे नहीं हम
अब तो ये
ठान चुके हम।

अस्तित्व की लड़ाई नारी जीवन का ध्रुव सत्य है। नया नहीं बहुत पुराना–एक अहिल्या थी बिना कारण बुत बना दी गई। हिम्मत थी सो अपनी साधना अपने तप से त्राण पा गई। शबरी, कुबड़ी, राधा, सीता, मीरा, सावित्री, लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई नामों की कमी नहीं–हर नाम के साथ अपनी पहचान की लड़ाई अपने वज़ूद का संघर्ष-सबने कहीं न कहीं बंधनों को तोड़ा, नकारा, अपने नियम अपने कानूनों पर अपना जीवन स्तम्भ खड़ा किया। यह स्तम्भ अकेला नहीं था–इसकी छाया में अनगिनत छायाओं ने आसरा पाया, मजबूती पाई और आने वाली पीढ़ियों ने प्रेरणा ली।

अकेले विश्वास की पहल

इनके साथ कोई नहीं था–पूरा घर परिवार समाज सब एक तरफ और अकेले खुद को पहचानने, पाने और अपनी मर्जी से अपनी तरह जीने की ललक लिए ये हमारी पूर्वजाएं लड़ती रहीं–इनमें निराशा नहीं थी। विश्वास था कि ये जीतेंगी। इनकी लड़ाई बेकार नहीं जाएगी। मौन रहकर कुछ पाया नहीं जा सकता। ये समझ गई देवी बनना, त्याग, दया, ममता की देवी बनने से पहले एक औरत की तरह जीने की जरूरत है। इन्होंने अपनी भीतरी आवाज को पहचाना और उसे स्वीकार किया। चुप रहना कोई हल नहीं–जो जितना चुप है उतना ही दुःखी, उतना ही पीड़ित–चुप रहो तो लोग दबाते हैं–पलट कर दांत गुर्रा दो तो सभी भय खा जाएंगे–सामने वाले में भी दम है। लिहाजा बदला सब, दिल दिमाग तो मर्दों के समान ही उसके पास भी है न–सो कैसे न

बदलता-बदला और हमने पाया कि सारा आकाश हमारा है। सारी धरती हमारी ही बाट जोह रही थी। हाय हमने ही अपनी बाहें क्यों न खोलीं। औरतें जागीं तो औरों को भी जगाने लगीं—जिसके पांव बिवाई फटी थी वही यह दर्द जान सकती थी न—मर्दों के समाज में कौन उन्हें पूछता-कौन उनका दर्द जानता सो यह अकेला संघर्ष नहीं था—बहन ने बहन की बांह थामी—अपनी आंखों से देखा। सच उसे भी समझाया और तब एक नहीं हजार-हजार आंखें एक साथ शर्म के पर्दे से झांक उठीं उनमें सच और आत्मविश्वास की झलक थी। हजारों हाथ मुट्ठियों में तन गए। इनमें निश्चय था, विरोध था और था कुछ कर जाने का वादा—*तोड़-तोड़कर बन्धनों को देखो बहनें आती हैं*—के सुरमय गीत गूंज उठे। आकांक्षाओं के पर लगाकर हम उड़ चले अनन्त आकाश में जहां हमारी कल्पनाएं थीं और हम। अब पिंजरों में बंधकर भला कौन रह सकता था—सो बंधन टूटे। देहरी के बाहर का संसार हमारा है—हमने जाना। मर्दों का धर्म, उनका समाज, उनकी मर्यादाएं भला ये क्यों स्वीकार पातीं। नए-नए नाम, नई-नई परिभाषाओं में हमें बांधा जाने लगा, लेकिन सफ़र रुक थोड़े ही सकता था।

परम्परा की थाह लेना आसान नहीं, लेकिन लड़ाइयों का यह सफ़र हमारा जो इतिहास देख पाया वह आधी सदी का तो है ही। ऐसा कौन सा संघर्ष था जब औरत साथ नहीं थी— देवासुर संग्राम हुआ तो अकेली कैकेयी की कनिष्ठा (छोटी उंगली) ने दशरथ के पूरे हारे हुए पौरुष को सम्बल दिया। सत्यवान के खोए प्राण सावित्री यमराज तक से छीन लाई—यह थी नारी शक्ति—बड़ी विडम्बना थी कि उन्होंने हमें देवी बना दिया, पर एक औरत की तरह जीने का हक नहीं दिया। देवत्व के मोह में कभी अपनी तरह जी न सके हम। आपस में ही लड़ते रहे—तू बड़ी कि मैं और शासन करता रहा हमारा ही पैदा किया अंश हमीं पर।

आधी सदी क्या जन्मों बीत गए इस संघर्ष में—लगता है जैसे एक नहीं हजार हजार अम्बाएं बार बार जन्म लेकर हजारों भीष्मों के खिलाफ़ जीवन का महाभारत लड़ रही हैं। हाथ से हाथ जोड़कर संगठन बनाए—एक के बाद एक अनेक संगठन, अनेक संस्थाएं अनेकानेक आंदोलन धरने, मार्च, सेमिनार, सभाएं समाज में जितना-जितना अन्याय बढ़ा—हमारा विरोध उतना-उतना बढ़ता गया—एक आग दबी थी—इस भड़की हुई आग में उनका अन्याय अत्याचार का काम करता रहा और आज इस आग की तपिश में समाज भय खा गया तो कौन हैरानी—हमें खुशी हैं कि हमारा जलना व्यर्थ नहीं गया। इस आग में समाज का पाप भी गला है—आंकड़ों में बात करना फ़िजूल है क्योंकि जब दिल-भावनाएं बदलती हैं तो कौन समय, अंकों के आंकड़े उसे नाप सकते हैं। □